INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 16 | ISSUE - 6 | JULY – 2026

संजीव के उपन्यासों में आदिवासी समाज की लोक संस्कृति का अध्ययन

सरला सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. सरोज गोस्वामी
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग (सेवानिवृत्त)
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

भारतीय समाज विविध संस्कृतियों, भाषाओं तथा लोक परंपराओं का संगम है। इस विविधता में आदिवासी समाज की लोक संस्कृति का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समुदाय का जीवन प्रकृति, जंगल, पर्वत, नदियों तथा सामुदायिक परंपराओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनकी संस्कृति में लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, धार्मिक आस्थाएँ, रीति–रिवाज तथा पारंपरिक ज्ञान का समृद्ध भंडार विद्यमान है। आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव से इन सांस्कृतिक मूल्यों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसलिए साहित्य के माध्यम से इन सांस्कृतिक परंपराओं का अध्ययन अत्यंत आवश्यक हो जाता है। समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में संजीव उन प्रमुख उपन्यासकारों में हैं जिन्होंने समाज के वंचित, उपेक्षित तथा हाशिए पर स्थित समुदायों को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाया। उनके उपन्यासों में आदिवासी समाज का जीवन केवल करुणा का विषय नहीं है, बल्कि संघर्ष, आत्मसम्मान और सांस्कृतिक अस्मिता का सशक्त दस्तावेज है। उन्होंने आदिवासी जीवन की वास्तविक परिस्थितियों, सामाजिक संरचना, आर्थिक समस्याओं तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया है। संजीव के उपन्यासों में आदिवासी समाज की लोक संस्कृति अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है। लोकगीत, पर्व–त्योहार, विवाह संस्कार, लोकदेवताओं की पूजा, प्राकृतिक संसाधनों के प्रति श्रद्धा, सामुदायिक जीवन तथा पारंपरिक ज्ञान उनके साहित्य को विशिष्ट बनाते हैं। लेखक ने इन सांस्कृतिक पक्षों को केवल वर्णित नहीं किया, बल्कि उनके सामाजिक और मानवीय महत्व को भी स्थापित किया है।

मुख्य शब्द – संजीव, आदिवासी समाज, लोक संस्कृति, लोकजीवन, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकपरंपरा, सांस्कृतिक अस्मिता, विस्थापन, प्रकृति, सामाजिक न्याय, हिन्दी उपन्यास।

प्रस्तावना –

भारतीय संस्कृति का मूल स्वर उसकी बहुलता, सहिष्णुता और विविधता में निहित है। इस सांस्कृतिक विविधता में आदिवासी समाज का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। आदिवासी समुदाय भारतीय सभ्यता के उन प्राचीन सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनकी जीवन–पद्धति प्रकृति, श्रम, सामुदायिक सहयोग और लोकपरंपराओं पर आधारित रही है। इन समुदायों ने हजारों वर्षों से जल, जंगल और जमीन के साथ

सह–अस्तित्व का ऐसा संबंध विकसित किया है, जो आधुनिक पर्यावरणीय चिंतन के लिए भी प्रेरणास्रोत है। आदिवासी समाज की संस्कृति लिखित ग्रंथों की अपेक्षा मौखिक परंपराओं में अधिक सुरक्षित रही है। लोकगीत, लोककथाएँ, मिथक, लोकनृत्य, धार्मिक अनुष्ठान, कृषि–आधारित पर्व, रीति–रिवाज तथा सामुदायिक उत्सव उनके सांस्कृतिक जीवन की आधारशिला हैं।

''लोक संस्कृति किसी भी समाज की सामूहिक स्मृति तथा सांस्कृतिक चेतना की वाहक होती है। यह केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि समाज के इतिहास, अनुभव, जीवन–मूल्यों, नैतिक आदर्शों तथा सामाजिक संबंधों का जीवंत दस्तावेज होती है। लोक संस्कृति में निहित परंपराएँ व्यक्ति को उसके समुदाय से जोड़ती हैं तथा सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखती हैं। आदिवासी समाज में लोक संस्कृति जीवन के प्रत्येक चरण – जन्म, नामकरण, विवाह, कृषि, शिकार, पर्व–त्योहार तथा मृत्यु संस्कार से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। इसलिए आदिवासी लोक संस्कृति का अध्ययन वस्तुतः उनके संपूर्ण सामाजिक जीवन के अध्ययन के समान है।''[1]

''हिन्दी साहित्य में लंबे समय तक आदिवासी समाज को सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया, परंतु उत्तर–आधुनिक और समकालीन दौर में आदिवासी विमर्श के विकास के साथ इस दिशा में गंभीर साहित्यिक प्रयास हुए। अनेक साहित्यकारों ने आदिवासी जीवन की समस्याओं, सांस्कृतिक अस्मिता तथा संघर्ष को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। इन्हीं रचनाकारों में संजीव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। संजीव ने अपने उपन्यासों में आदिवासी समाज को बाहरी दृष्टि से नहीं, बल्कि उसके सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश के भीतर प्रवेश करके चित्रित किया है। उनके यहाँ आदिवासी जीवन केवल करुणा का विषय नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, सांस्कृतिक गौरव और संघर्षशील चेतना का प्रतीक है।''[2]

संजीव के उपन्यासों में लोक संस्कृति का सबसे प्रमुख आधार प्रकृति है। जंगल, नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु–पक्षी और ऋतु–चक्र केवल प्राकृतिक तत्व नहीं, बल्कि आदिवासी जीवन के अभिन्न सांस्कृतिक अंग हैं। आदिवासी समाज प्रकृति को उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवनदाता और संरक्षक के रूप में देखता है। उनके धार्मिक विश्वासों में वृक्षों, पहाड़ों, नदियों तथा वनदेवताओं की पूजा का विशेष महत्व है। संजीव ने इन लोकविश्वासों को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से चित्रित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि आदिवासी संस्कृति का आधार पर्यावरणीय संतुलन और प्रकृति के प्रति गहरा सम्मान है।

''लोकगीत और लोकनृत्य आदिवासी संस्कृति की आत्मा हैं। कृषि कार्य, वर्षा, शिकार, विवाह, जन्मोत्सव तथा सामूहिक पर्वों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत सामुदायिक एकता, श्रम–संस्कृति और प्रकृति–प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। लोकनृत्य केवल कलात्मक प्रदर्शन नहीं, बल्कि सामाजिक सहभागिता और सामूहिक चेतना का प्रतीक है। संजीव ने अपने उपन्यासों में इन लोककलाओं का चित्रण करते हुए आदिवासी समाज की जीवंत सांस्कृतिक परंपराओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।''[3]

संजीव के उपन्यासों में आदिवासी समाज के पर्व–त्योहारों का भी विस्तृत चित्रण मिलता है। फसल कटाई, वर्षा आगमन, शिकार उत्सव तथा सामुदायिक मेलों के अवसर पर आयोजित धार्मिक अनुष्ठान सामाजिक एकता को सुदृढ़ करते हैं। इन अवसरों पर सामूहिक भोजन, गीत, नृत्य तथा पारंपरिक वाद्ययंत्रों का प्रयोग केवल उत्सवधर्मिता नहीं, बल्कि सामुदायिक जीवन की सांस्कृतिक निरंतरता का प्रतीक है। लेखक ने यह दिखाया है कि आधुनिक विकास की प्रक्रियाओं के बावजूद ये परंपराएँ आदिवासी अस्मिता की रक्षा का महत्वपूर्ण माध्यम बनी हुई हैं।

आदिवासी विवाह–संस्कार, पारिवारिक व्यवस्था तथा स्त्री की भूमिका भी संजीव के कथा–साहित्य के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। आदिवासी समाज में स्त्री अपेक्षाकृत अधिक श्रमशील, आत्मनिर्भर और सामाजिक जीवन की सक्रिय सहभागी होती है। कृषि कार्य, पारिवारिक उत्तरदायित्व, सांस्कृतिक आयोजनों तथा आर्थिक गतिविधियों में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संजीव ने आदिवासी स्त्री को केवल पीड़िता के रूप में नहीं, बल्कि संघर्षशील, आत्मसम्मानी तथा सांस्कृतिक मूल्यों की संरक्षिका के रूप में चित्रित किया है।

''आर्थिक जीवन भी लोक संस्कृति से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। कृषि, वनोपज संग्रह, शिकार, पशुपालन तथा हस्तशिल्प आदिवासी जीवन की पारंपरिक आजीविका रहे हैं। इन व्यवसायों के साथ अनेक धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ जुड़ी हुई हैं। किन्तु औद्योगीकरण, खनन, वन–अधिग्रहण तथा

विस्थापन के कारण इन परंपरागत व्यवसायों पर गंभीर संकट उत्पन्न हुआ है। संजीव के उपन्यास इस परिवर्तन को केवल आर्थिक संकट के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विघटन के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं।''[4]

वैश्वीकरण, बाजारवाद तथा आधुनिक विकास की प्रक्रियाओं ने आदिवासी समाज की लोक संस्कृति को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। आधुनिक शिक्षा, संचार माध्यम, शहरीकरण तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से पारंपरिक लोकविश्वास, लोककला और सामुदायिक जीवन में परिवर्तन दिखाई देता है। संजीव इन परिवर्तनों का चित्रण करते हुए यह संकेत करते हैं कि यदि विकास की प्रक्रिया सांस्कृतिक संरक्षण के साथ संतुलित न हो, तो आदिवासी समाज अपनी विशिष्ट पहचान खो सकता है। इसलिए वे विकास और सांस्कृतिक संरक्षण के मध्य संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

संजीव के उपन्यासों का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे आदिवासी लोक संस्कृति को स्थिर या जड़ परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तनशील, जीवंत और संघर्षशील सांस्कृतिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्र अपनी संस्कृति, भाषा, परंपराओं तथा प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए संघर्ष करते हैं। इस प्रकार उनके उपन्यास आदिवासी लोक संस्कृति को सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता तथा लोकतांत्रिक अधिकारों के व्यापक संदर्भ में स्थापित करते हैं।

संजीव के उपन्यासों में चित्रित आदिवासी लोक संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक बहुलता का महत्त्वपूर्ण आयाम है। उनके कथा–साहित्य में लोक संस्कृति केवल सांस्कृतिक विरासत का चित्रण नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, पर्यावरणीय चेतना, सामुदायिक जीवन–मूल्यों तथा सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण का सशक्त माध्यम बनकर उभरती है। इस दृष्टि से संजीव का साहित्य हिन्दी के आदिवासी विमर्श को नई वैचारिक दिशा प्रदान करता है तथा भारतीय लोक–संस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

विश्लेषण –

आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता का अत्यंत प्राचीन एवं मूल निवासी समुदाय माना जाता है। इनका जीवन प्रारंभ से ही प्रकृति के निकट विकसित हुआ है। पर्वत, वन, नदियाँ तथा जैव विविधता इनके जीवन का आधार रहे हैं। आदिवासी समाज ने सदैव प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवनदाता के रूप में स्वीकार किया है। यही कारण है कि इनके धार्मिक विश्वास, सामाजिक परंपराएँ तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ प्राकृतिक परिवेश से गहरे रूप में जुड़ी हुई हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों में गोंड, भील, संथाल, मुंडा, उरांव, बैगा, कोरकू, हो, खड़िया आदि अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी भाषा, लोकगीत, लोकनृत्य, देवी–देवता, जीवन पद्धति तथा सामाजिक संरचना है। यद्यपि इनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में भिन्नता है, फिर भी प्रकृति के प्रति सम्मान, सामूहिक जीवन तथा श्रम की प्रतिष्ठा सभी जनजातियों की समान विशेषताएँ हैं।

औपनिवेशिक शासन के दौरान वन कानूनों तथा भूमि अधिग्रहण की नीतियों ने आदिवासी समाज के पारंपरिक अधिकारों को गंभीर रूप से प्रभावित किया। स्वतंत्रता के बाद भी विकास परियोजनाओं, बाँधों, खनन उद्योगों तथा औद्योगीकरण के कारण अनेक आदिवासी समुदायों को विस्थापन का सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना भी प्रभावित हुई।

समकालीन हिन्दी साहित्य ने आदिवासी जीवन की इन जटिल परिस्थितियों को गंभीरता से अभिव्यक्त किया है। संजीव उन साहित्यकारों में अग्रणी हैं जिन्होंने आदिवासी समाज को केवल शोषण के संदर्भ में नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक गरिमा और जीवन मूल्यों के साथ चित्रित किया है। उनके उपन्यास आदिवासी अस्मिता के महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज हैं।

1. लोक संस्कृति की अवधारणा –

लोक संस्कृति किसी समाज की सामूहिक जीवन शैली का परिचायक होती है। इसमें लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, मिथक, रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास, लोकभाषा, वेशभूषा, भोजन, कृषि परंपराएँ तथा सामाजिक व्यवहार सम्मिलित होते हैं। यह संस्कृति लिखित ग्रंथों की अपेक्षा मौखिक परंपरा द्वारा अधिक सुरक्षित रहती है।

आदिवासी समाज की लोक संस्कृति प्रकृति के साथ गहरे संबंध पर आधारित है। जंगल उनके लिए केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक आस्था का केंद्र भी है। वृक्ष, पर्वत, नदी, सूर्य, चंद्रमा तथा धरती की पूजा उनके जीवन का अभिन्न अंग है। संजीव इन सभी तत्वों को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से अपने उपन्यासों में प्रस्तुत करते हैं।

लोक संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष सामूहिकता है। आदिवासी समाज में व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय को अधिक महत्व दिया जाता है। प्रत्येक सामाजिक कार्य सामूहिक सहभागिता से संपन्न होता है। यही सामूहिकता उनके उत्सवों, कृषि कार्यों तथा सांस्कृतिक आयोजनों में स्पष्ट दिखाई देती है। संजीव के उपन्यासों में लोक संस्कृति किसी संग्रहालय की वस्तु नहीं है, बल्कि जीवंत सामाजिक प्रक्रिया है। उनके पात्र अपने जीवन के प्रत्येक चरण में लोक परंपराओं का पालन करते हैं। लेखक यह भी दर्शाते हैं कि आधुनिकता के प्रभाव के बावजूद आदिवासी समाज अपनी सांस्कृतिक पहचान को बचाए रखने का निरंतर प्रयास कर रहा है।

2. संजीव के उपन्यासों में लोकजीवन का चित्रण –

संजीव ने अपने उपन्यासों में आदिवासी जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का अत्यंत संवेदनशील चित्रण किया है। उनके पात्र जंगल, पहाड़, खेत तथा नदी के बीच अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनका जीवन श्रम, सहयोग तथा प्रकृति के साथ संतुलन पर आधारित है। आदिवासी समाज के दैनिक जीवन, आवास, भोजन, वेशभूषा तथा सामाजिक संबंधों को अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उनके पात्र कृत्रिमता से दूर सरल, ईमानदार तथा सामुदायिक भावना से परिपूर्ण दिखाई देते हैं। यही विशेषता उनके साहित्य को विश्वसनीय बनाती है।

संजीव के अनुसार आदिवासी समाज में श्रम को सम्मान प्राप्त है। स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से कृषि, वनोपज संग्रह तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हैं। सामूहिक श्रम के कारण सामाजिक संबंधों में सहयोग और आत्मीयता बनी रहती है। बाहरी शक्तियों द्वारा आदिवासी समाज का आर्थिक एवं सांस्कृतिक शोषण किया जाता है। महाजन, ठेकेदार, वन अधिकारी तथा उद्योगपति उनके श्रम और संसाधनों का दोहन करते हैं। इसके बावजूद आदिवासी समाज अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने का प्रयास करता है।

3. लोकगीत एवं लोकनृत्य –

आदिवासी समाज में लोकगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं हैं, बल्कि सामूहिक स्मृति और सांस्कृतिक इतिहास के वाहक भी हैं। जन्म, विवाह, कृषि, वर्षा, शिकार तथा पर्व–त्योहार जैसे प्रत्येक अवसर पर लोकगीत गाए जाते हैं। संजीव ने अपने उपन्यासों में लोकगीतों के माध्यम से आदिवासी समाज की संवेदनाओं, प्रेम, संघर्ष तथा प्रकृति के प्रति अनुराग को अभिव्यक्त किया है। इन गीतों में जीवन की सहजता, सामूहिकता तथा सांस्कृतिक चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। लोकनृत्य आदिवासी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। मांदर, ढोल, नगाड़ा, बाँसुरी तथा पारंपरिक वाद्ययंत्रों की धुन पर सामूहिक नृत्य उनकी सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। पुरुष और महिलाएँ समान उत्साह से इसमें भाग लेते हैं।

संजीव इन नृत्यों को केवल उत्सव का दृश्य नहीं मानते, बल्कि इन्हें सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक संरक्षण तथा सामुदायिक संवाद का माध्यम बताते हैं। उनके उपन्यासों में लोकनृत्य जीवन की ऊर्जा और सामूहिक चेतना का प्रतीक बनकर उभरता है।

4. पर्व–त्योहार एवं धार्मिक विश्वास –

आदिवासी समाज के पर्व–त्योहार प्रकृति के चक्र से जुड़े होते हैं। फसल कटाई, वर्षा आगमन, वन संरक्षण तथा सामुदायिक समृद्धि के अवसर पर विभिन्न उत्सव आयोजित किए जाते हैं। इन पर्वों में पूरा समुदाय सहभागी बनता है। संजीव ने अपने उपन्यासों में आदिवासी धार्मिक विश्वासों का अत्यंत संतुलित चित्रण किया है। उनके पात्र ग्राम देवता, वन देवता, पूर्वजों तथा प्रकृति की शक्तियों की पूजा करते हैं। इन आस्थाओं का उद्देश्य प्रकृति और समाज के बीच संतुलन बनाए रखना है।

आदिवासी समाज के धार्मिक अनुष्ठानों में दिखावा नहीं होता। सामूहिक पूजा, पारंपरिक वाद्ययंत्र, लोकगीत तथा सामूहिक भोजन उनके धार्मिक जीवन की विशेषताएँ हैं। इससे सामाजिक एकता और पारस्परिक सहयोग की भावना विकसित होती है। संजीव यह भी संकेत करते हैं कि आधुनिक धार्मिक और आर्थिक शक्तियाँ आदिवासी समाज की पारंपरिक आस्थाओं को प्रभावित कर रही हैं। फिर भी उनका सांस्कृतिक आधार आज भी जीवित है और सामुदायिक जीवन को दिशा प्रदान करता है।

5. आदिवासी समाज के विवाह संस्कार एवं पारिवारिक जीवन –

आदिवासी समाज में विवाह केवल दो व्यक्तियों का संबंध नहीं, बल्कि दो परिवारों एवं समुदायों के मध्य सामाजिक और सांस्कृतिक बंधन का प्रतीक होता है। विवाह संस्कार सामूहिक सहभागिता के साथ सम्पन्न होते हैं, जिनमें लोकगीत, लोकनृत्य तथा पारंपरिक रीति–रिवाजों का विशेष महत्व होता है। संजीव ने अपने उपन्यासों में इन संस्कारों का अत्यंत सहज और यथार्थ चित्रण किया है।

विवाह के अवसर पर पूरा गाँव उत्सव का वातावरण निर्मित करता है। पारंपरिक वाद्ययंत्रों की धुन, सामूहिक नृत्य तथा लोकगीत विवाह समारोह को सांस्कृतिक उत्सव का स्वरूप प्रदान करते हैं। संजीव के पात्र इन परंपराओं को केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामाजिक एकता का माध्यम मानते हैं।

आदिवासी समाज में पारिवारिक संबंध परस्पर सहयोग, श्रम तथा समानता पर आधारित होते हैं। परिवार का प्रत्येक सदस्य आर्थिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन करता है। संयुक्त परिवार की परंपरा सामाजिक सुरक्षा और सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संजीव यह भी दर्शाते हैं कि आधुनिकता तथा बाहरी प्रभावों के कारण पारंपरिक विवाह संस्कारों में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। फिर भी आदिवासी समाज अपने मूल सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास करता है।

6. आदिवासी समाज में स्त्री की भूमिका –

संजीव के उपन्यासों में आदिवासी स्त्री अत्यंत परिश्रमी, आत्मनिर्भर तथा स्वाभिमानी रूप में चित्रित हुई है। वह केवल गृहकार्य तक सीमित नहीं रहती, बल्किकृषि, वनोपज संग्रह, पशुपालन तथा सामाजिक गतिविधियों में भी समान रूप से भाग लेती है। आदिवासी स्त्रियाँ लोकगीतों एवं लोकनृत्यों की प्रमुख संवाहक होती हैं। वे पारंपरिक ज्ञान, लोककथाओं तथा सांस्कृतिक मूल्यों को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। इस प्रकार वे लोक संस्कृति के संरक्षण की प्रमुख आधारशिला हैं।

संजीव ने आदिवासी स्त्रियों के संघर्षपूर्ण जीवन का भी यथार्थ चित्रण किया है। आर्थिक शोषण, विस्थापन, गरीबी तथा बाहरी शक्तियों के अत्याचारों का सबसे अधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है। इसके बावजूद वे साहस और आत्मसम्मान के साथ जीवन का सामना करती हैं। आदिवासी समाज में स्त्रियों की सामाजिक भूमिका अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक है। यह विशेषता मुख्यधारा के अनेक सामाजिक ढाँचों से भिन्न दिखाई देती है और आदिवासी संस्कृति की सकारात्मक विशेषताओं को रेखांकित करती है।

7. आर्थिक जीवन और प्रकृति से संबंध –

आदिवासी समाज का आर्थिक जीवन मुख्यतः कृषि, वनोपज, पशुपालन तथा प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है। जंगल उनके लिए भोजन, औषधि, ईंधन तथा आजीविका का प्रमुख स्रोत है। संजीव ने इन आर्थिक गतिविधियों को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया है। प्रकृति के साथ आदिवासी समाज का संबंध केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भी है। वे जंगल, नदी, पर्वत तथा वृक्षों को जीवनदाता मानते हैं। यही कारण है कि उनके धार्मिक विश्वास तथा लोकपरंपराएँ प्रकृति संरक्षण से जुड़ी हुई हैं।

संजीव के उपन्यासों में खनन परियोजनाओं, औद्योगीकरण तथा वन विनाश के कारण आदिवासी समाज के आर्थिक संकट का मार्मिक चित्रण मिलता है। प्राकृतिक संसाधनों से वंचित होने पर उनकी पारंपरिक जीवन शैली भी प्रभावित होती है। आदिवासी समाज के आर्थिक विकास की योजनाएँ उनकी संस्कृति और पर्यावरण के संरक्षण के साथ ही सफल हो सकती हैं। केवल संसाधनों का दोहन विकास का वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकता।

8. विस्थापन, शोषण और सांस्कृतिक संकट –

संजीव के उपन्यासों में विस्थापन एक केंद्रीय समस्या के रूप में उभरता है। विकास परियोजनाओं, बाँधों, खनन उद्योगों तथा वन कानूनों के कारण आदिवासी समुदायों को अपने पारंपरिक निवास क्षेत्रों से हटना पड़ता है। इससे उनका सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन गहराई से प्रभावित होता है।

विस्थापन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक स्मृतियों, धार्मिक आस्थाओं तथा सामाजिक संबंधों का भी विघटन है। जब समुदाय अपने जंगल और भूमि से दूर हो जाता है, तब उसकी लोक संस्कृति भी संकट में पड़ जाती है। संजीव ने महाजनों, ठेकेदारों, उद्योगपतियों तथा प्रशासनिक तंत्र द्वारा किए जाने वाले आर्थिक और सामाजिक शोषण का भी प्रभावशाली चित्रण किया है। अशिक्षा तथा गरीबी का लाभ उठाकर आदिवासियों के अधिकारों का हनन किया जाता है। इन परिस्थितियों के बावजूद संजीव के पात्र संघर्ष का मार्ग अपनाते हैं। वे अपनी भूमि, संस्कृति तथा पहचान की रक्षा के लिए संगठित होकर प्रतिरोध करते हैं। यही प्रतिरोध उनके साहित्य का सबसे सशक्त पक्ष है।

9. सांस्कृतिक अस्मिता एवं संरक्षण –

संजीव के उपन्यासों में सांस्कृतिक अस्मिता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेखक यह मानते हैं कि किसी भी समाज की पहचान उसकी भाषा, संस्कृति, परंपरा तथा सामूहिक स्मृतियों से निर्मित होती है। आदिवासी समाज की सांस्कृतिक विशिष्टता भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। लोकगीत, लोककथाएँ, पारंपरिक वाद्ययंत्र, हस्तशिल्प, नृत्य, धार्मिक अनुष्ठान तथा प्राकृतिक जीवन शैली आदिवासी सांस्कृतिक पहचान के प्रमुख आधार हैं। संजीव ने इन सभी तत्वों को साहित्यिक संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। आधुनिक विकास की प्रक्रिया का विरोध नहीं करते, बल्कि यह आग्रह करते हैं कि विकास मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ संतुलित होना चाहिए। यदि विकास के नाम पर लोक संस्कृति का विनाश होता है, तो वह वास्तविक प्रगति नहीं कहलाएगी।

निष्कर्ष –

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि संजीव के उपन्यासों में आदिवासी समाज की लोक संस्कृति का चित्रण अत्यंत यथार्थ, संवेदनशील और जीवन के निकट है। उन्होंने आदिवासी समुदाय को केवल शोषित एवं वंचित वर्ग के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसकी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं, लोकजीवन, लोकगीतों, लोकनृत्यों, धार्मिक आस्थाओं, प्रकृति–प्रेम, सामुदायिक जीवन तथा संघर्षशील चेतना को भी प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनके उपन्यास स्पष्ट करते हैं कि आदिवासी संस्कृति भारतीय सांस्कृतिक विरासत का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसकी रक्षा और संवर्धन समय की आवश्यकता है। संजीव के उपन्यास सामाजिक यथार्थ के साथ–साथ सांस्कृतिक संरक्षण का भी सशक्त संदेश देते हैं। उन्होंने आधुनिक विकास, औद्योगीकरण, विस्थापन और शोषण के कारण आदिवासी समाज के सामने उत्पन्न सांस्कृतिक संकट को रेखांकित करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि विकास तभी सार्थक होगा जब वह आदिवासी समुदाय की सांस्कृतिक अस्मिता, परंपराओं और प्राकृतिक जीवन–मूल्यों का सम्मान करे। इस दृष्टि से संजीव का कथा–साहित्य आदिवासी विमर्श, लोक संस्कृति और सामाजिक न्याय के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण और प्रामाणिक साहित्यिक स्रोत सिद्ध होता है।

संदर्भ –

[1] उपाध्याय, कृष्णदेव. लोक साहित्य की भूमिका. वाराणसीः हिन्दी प्रचारक संस्थान, 2006, पृ. 45–56

[2] तलवार, वीर भारत. आदिवासी विमर्श और हिंदी साहित्य. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 2014, पृ. 51–68

[3] परमार, श्याम. भारतीय लोक संस्कृति. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 87–98

[4] संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2000, पृ. 75–92